UNIVERSAL LIBRARY
OU_186013
UNIVERSAL LIBRARY

हिन्दी
छन्द प्रकाश

रघुनन्दन शास्त्री

प्रथम संस्करण

मूल्य : चार रुपया

सङ्कल्प

ॐ अद्य तत्सत्.....

इस पुस्तक की आय का ३३ प्रतिशत भाग हिन्दी साहित्य की अभिसमृद्धि के निमित्त पंजाब यूनिवर्सिटी सोलन को अर्पण किया जायगा।

—रघुनन्दन

न्यू इण्डिया प्रेस, नई दिल्ली में मुद्रित।

अर्चना

[सन् '५९-६० में रचित ५९ गीतों का संग्रह]

प्रा. कृष्णवल्लभ दवे
एम. ए. एल-एल. बी.

प्रतिभा प्रकाशन, हैदराबाद-१

अक्षय तृतीया वि. सं. २०१८
१८ अप्रैल, १९६१

सर्वाधिकार लेखक के अधीन

मूल्य
तीन रुपये

मुद्रक
कर्मशियल प्रिंटिंग प्रेस
८३१, बेगमबाज़ार, हैदराबाद

प्रकाशक
प्रतिभा प्रकाशन
१५-८-४६९, फ़ीलखाना, हैदराबाद—१ (आं. प्र.)

आमुख

कृष्णवल्लभ जी की साधना के ये उन्सठ गीत उनके निश्छल और नम्र हृदय के परिचायक हैं। 'शत-शत शूलों' से इस साधक ने अपने हृदय का शृंगार किया है। पीडा के प्यारे प्राणों का मधुभार ले कर उसकी पलकें नत हो जाती हैं और अपने उज्ज्वल उर को वह प्रिय को अर्पित कर देता है। हृदय के इस उन्मादित उपहार को प्रिय से मान्य कराके वह अपने और प्रिय के बीच का व्यवधान खो देना चाहता है। स्नेह-युक्त पीडा से कम्पित होने वाले जीवन-दीप से अनन्त प्रिय की आरती करके वह जीवन-दीप की ज्योति को अनन्त बना लेने की कामना रखता है।

अनन्त की मानस पूजा के लिए इस साधक ने पूजा सामग्री की सज्जा अपने अन्तरतम प्रदेश में ही की है। 'प्राण-पुष्प की मृदु अंजलि' वह अनन्त प्रिय के चरणों में नित्य अर्पित करता रहता है। 'मधुसम, मंगलमय' प्रिय को वह 'मधुमय मन की मधुमय भेंट' अर्पित करता है और स्वीकार कर लेने की प्रार्थना करता है।

शरद के घन, शरद के चाँद, शरद की रात, शरद के प्रात तथा सम्पूर्ण शरद के समान वह अपने समग्र जीवन को बना लेना चाहता है। इसी जीवन के सुकुमार सुमनों को वह प्रिय का उपहार बना कर उसे अर्पित करता है।

कुसुमाकर के खिलने वाले कुसुमों और सौरभ-भरी प्रकृति की उन्माददायिनी शोभा के वातावरण में जब कवि का हृदय वसन्ती

फूलों-सा खिल कर पवित्र हो जाता है तब चारों तरफ़ का स्वार्थी जगत् उससे ईर्ष्या करता है। जगत् की इस कलुषित प्रवृत्ति का कारण वह प्रिय से पूछने लगता है।

प्रभात में क्षितिज का गुलाबी रंग जब धरती का धीरज भंग कर देता है तब कवि को अंबर और अवनी का अभिसार दृष्टिगोचर होता है और इस अभिसार महोत्सव में अनन्त प्रिय का हाथ है; इसलिए कवि उसे बधाई देता है। इसी लाली में उसे प्रणयी प्राणों के सौभाग्य का दर्शन प्रतिदिन प्रभात में होता है। प्रभात की इन्हीं प्रखर रश्मियों से कवि, अन्तर की सारी विकृतियों को मिटा देना चाहता है। इसी प्रकाश से ज्ञान-किरणों का संचय करके वह जगत् के 'पाखंडी परिधान' को नष्ट कर देने का संकल्प करता है। प्रभात से प्राप्त होने वाले स्वर्णिम सन्देशों को सुनने और समझने का सौभाग्य जिन लोगों को नहीं प्राप्त होता उन पर कवि तरस खाता है।

कवि अनन्त का अवनी के ही सुन्दर अञ्चल में खोजा जाना संभव मानता है। ऋषियों के 'ईशावास्यमिदं सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत्' के उपनिषद् वाक्य से यह भावना साम्य रखती है। 'नव कोंपल की थिरकन पर' अनेकों प्राणों को वह घायल होते देखता है। वह इसीलिए कि उस थिरकन में अनन्त प्रिय का सौन्दर्य नृत्य कर रहा है।

उदीयमान जीवन-साधक ने विश्वमंगलविधायिनी करुणा के प्रभाव से उत्पन्न होने वाली किसी हृदय की आहों को पारस की तरह देखा है। उसके अनुसार ये आहें 'अंतर के अंचल में' पहुँच कर प्राणों को कंचन बना देती हैं।

जगत् में खिलने से पहले ही मुरझा जाने वालों को देख कर कवि के भीतर यही प्रश्न उठता है कि खिलने से पहले मुरझाना किस नगरी का नियम है। असफलता के इस राज्य को भी कवि उसी अनन्त प्रिय

को अर्पित कर देता है। विश्व में लघु प्राणों पर तिमिर और तम के क्रूर आक्रमण को देख कर कवि का हृदय पीडा-बोझिल हो गया है और इस आक्रमण को वह रोक देना चाहता है।

साधना के इन गीतों में कवि ने सम्पूर्ण जगत् को, अंबर से ले कर अवनी तक के विस्तृत प्रसार में, अनन्त की उपासना के लिए प्रस्तुत देखा है। अंबर, अंबुज, सन्ध्या और चन्द्रमा – सब इसी विराट् उपासना में उसे लीन दिखाई पड़ते हैं। उसे यह विश्वास है कि यदि राह न छोड़े तो साधक को पराजय नहीं प्राप्त हो सकती।

'जगती और रजनी', 'विकलित मृदु जीवन' और 'मृदुलित प्रिय प्राण' सबको पीडा का अभिशाप भोगना पड़ रहा है। इस विश्व-व्यापिनी व्यथा से कवि का उर व्यथित है। कण-कण पर छायी हुई करुणा को देख कर वह प्रिय से यही शिकायत करता है कि उसके राज्य में ऐसा कैसे संभव होता है ? उसको अवनी से ले कर अंबर तक का सारा संसार सूना दिखाई पड़ता है। जब सूनेपन के इस अभिसार को जीवन के अभिशाप की तरह कवि अनुभव कर लेता है, तब वह अपने अनन्त प्रिय से कह उठता है कि जब चारों तरफ़ यह सूनापन ही है तो तुम्हें किस आशा से जगाया जाय।

विश्व पर होने वाले क्रूर काल के आघातों को देख कर कवि तिलमिला उठता है और अनन्त को उलाहना देता है कि मृदु जीवन पर तुम्हारे द्वारा किये गये ये आघात क्या शोभा पाते हैं ?

एक तरफ़ कवि ने जीवन की विकृतियों और उस पर फैले हुए तम को देखा है और उससे वह क्षुब्ध हुआ है, विवश हुआ है और दूसरी तरफ़ उसने सम्मोहन के मृगजालों के बंधन को तोड़ डालने का सकल्प भी किया है।

जननी के अंचल में जीवन, उर में दीपक, दृग में उज्ज्वल गौरव और प्राणों में प्राणों को सजाने की शक्ति का दर्शन कवि ने किया है। समर्पण और बलिदानपूर्ण जननी के जीवन पर कवि ने अपने कृतज्ञता-पूर्ण भावों को निछावर कर दिया है।

मानव की पशुलीला पर भी कवि की दृष्टि रुकी है। स्नेह के अभाव पर भी उसका ध्यान गया है। मानव के दोषों को भूल जाने वाली सहिष्णुता उसमें है। उलझे हुए जीवन को भी उसने देखा है और सोचने लगा है कि सुलझी हुई पलकों में झूलने वाला प्रिय उलझे हुए लोगों को कैसे प्राप्त हो सकता है। वह तो प्रिय को प्राणों में पा कर उससे एकरूप हो जाना चाहता है।

जीवनपथ के कण-कण पर बिछे हुए शूलों को अपने हाथों से चुन लेने की चाह कवि ने अपने हृदय में पाल रखी है। उन शूलों को चुन कर कवि अपने प्राणों का शृंगार बनाना चाहता है। वह मृदु उर में दिव्य वेदना धारण करके साधना करना चाहता है, अंतर में भव्य भावना लेकर सजग अर्चना करना चाहता है, अंतस्तल में दर्द लेकर जन-जन का हित करना चाहता है, उर में मधु-संचय करके विष को भी अमृत बना देना चाहता है। यात्रा की इसी पगडंडी पर तो उसे प्रिय मिलेगा!

ज्वाला में शीतल मधु का दर्शन कवि को हुआ है। इस रहस्यमय पहचान को वह सबको बाँट देना चाहता है। उर में चित्र अंकित करने वाले चित्रकार का परिचय विश्व को देने की साध उसे है। प्रिय से जो अनुपम वरदान मधुमय प्रेम के रूप में प्राप्त हुआ है उसका प्रतिदान देने में कवि अपने को अक्षम अनुभव करता है। नयनों को, प्रेम को पहचानने वाला हृदय प्रिय ने ही दिया है तब बहुत से अभागे नयन इस वरदान से क्यों वंचित रह जाते हैं? यह वितर्क कवि के संमुख

एक समस्या बन कर प्रस्तुत रहता है। पर उसके अन्तर से यह संकल्प कभी ओझल नहीं हुआ है कि उसके जीवन को तो इसी जीवन में प्रिय की साधना करके पूर्ण होना है। इसीलिए वह विश्व को भी चेतावनी देता है कि 'समझ के द्वार खोल कर' ही 'प्राण-प्रिय' को प्राणों में समझा जा सकता है।

कवि की यह प्रथम प्रकाशित कृति है। उसका जीवन अग्रसर हो रहा है। साधना के श्री गणेश में त्रुटियाँ अवश्यंभाविनी हैं। उन्हें क्षम्य समझ कर मैंने उन पर ध्यान नहीं दिया है। एक नये साधक ने अपने पथ के आरंभ से जो उपादेय प्रकाश विकिरित किया है उसी की ओर मैंने इस पुस्तक के पाठकों का ध्यान विदिशित किया है। त्रुटियों को खोजने से अधिक लाभ की अपेक्षा नहीं रहती। साधना के पथ पर अग्रसर होने वाले साधकों की त्रुटियाँ या तो सिद्धि के पास पहुँच कर समाप्त हो जाती हैं या चन्द्र के कलंक की तरह गुण बन जाती हैं। इसी नियम पर आस्था रखते हुए त्रुटियों की ओर मैंने संकेत नहीं किया है। अतः कवि का वर्तमान सन्मूल्य और उसकी भविष्यत् बहुमूल्य संभावनाएँ ही मेरी विवेचना में स्थान पा सकी हैं।

गुरुदेव जयन्ती,
अधिकज्येष्ठ कृष्णाष्टमी, चन्द्रवार,
विक्रम सम्वत् २०१८

(डा.) रामनिरंजन पांडेय

आत्म-निवेदन

सत्य का शाश्वत रूप शिव है और शिव का शाश्वत रूप सौंदर्य ! अतः सत्य की अवहेलना कर शिव की कल्पना नहीं की जा सकती और न ही शिव को विस्मृत कर सौंदर्य की सराहना ! सत्य का यों शिवमय होना और शिव का सौन्दर्यमय अस्वाभाविक नहीं। सत्य, शिव और सौंदर्य, इस प्रकार मूलतः एकत्व को लिये रहने से, विभिन्न नहीं माने जा सकते। विभिन्नता केवल बाह्य दृष्टिकोण से ही मानी जा सकेगी—आन्तरिक पक्ष से नहीं ! इसी आन्तरिक एकत्व की अनुभूति मानव-हृदय की सहज अभिव्यक्ति के तादात्म्य का कारण है और इसी तादात्म्य का परिणाम है 'पूर्णता', जिसकी ओर प्रत्येक अपूर्ण प्राण भिन्न-भिन्न पथ को अपना कर, भिन्न-भिन्न दिशाओं की ओर अग्रसर हो, समस्त भारतीय विद्याओं के लक्ष्य के समान, निरन्तर एक ही लक्ष्य को प्राप्त करने में प्रयत्नशील हैं। और फिर जब सबके हृदय एक ही हैं, तब भला लक्ष्य कैसे भिन्न हो सकता है ? हाँ, मार्ग भले ही भिन्न हो—अपनी-अपनी शक्ति और सामर्थ्य के अनुसार ! यही एकत्व का दर्शन कविता का प्राण है और यही जीवन-दर्शन कविता का लक्ष्य ! यही कारण है कि इसी ऊँचाई पर तुलसी का संगीत विश्व-संगीत हो पाता है, सूर की वीणा के स्वर विश्व-वीणा के स्वर हो पाते हैं और मीरा की मधुर रागिनी विश्वराग हो पाती है। यहीं पर तुलसी 'राममय' हो पाते हैं, सूर 'गोपालमय' और मीरा 'कृष्णमय' अतएव इसी एकत्व के आदर्श के आधार पर 'स्व' और 'पर' का तादात्म्य और 'सः' की जानकारी सम्भव हो पाती है। और फिर तो 'जानत तुमहिं तुमहिंह्वै जाहिं' की परिणति निश्चित ही है !

ॐ

वस्तुतः कवि हृदय भी इसी आदर्श की ओर उन्मुख होने प्रयत्न-शील है, इसी जीवन-दर्शन को अपनाने संलग्न है और है इसी दिव्य रश्मि को प्राप्त करने दत्तचित्त ! किन्तु यह सब मानव देह के द्वारा ही—यथार्थ के आधार पर ही ! सम्भवतः इसीलिए आज, यथार्थ से विलग हो, केवल आदर्श मान कर चलना कवि के लिए अमान्य है। ठीक इसी तरह, आदर्श से विमुख हो, केवल यथार्थ में ही सिमट रहना कवि के लिए असह्य भी है। कारण, यथार्थ के नाम पर अश्लील-ताओं का घर कर लेना कोई असम्भव नहीं। और फिर जब कि जीवन पंकज की नाई, यथार्थ के कटघरे में आबद्ध होने पर भी आदर्श, का अनुराग लिये, संयम की रश्मियों से दिन प्रतिदिन समुज्ज्वल ही हो पाता है, तब भला किसी एक से भी आँख मूंदना कवि के लिए कैसे सम्भव हो सकता है ! इसके विपरीत तब ही तो कहीं उसे अपने आदर्श की प्राप्ति हो पाएगी और होगी 'तादात्म्य' की अनुभूति भी ! सत्यतः तभी वह सृष्टा कहलाने का अधिकारी हो सकेगा—उसकी सृष्टि भी तभी उज्ज्वल कहला सकेगी ! कारण स्पष्ट है कि उज्ज्वलता सदैव उज्ज्वलता का ही सृजन करती है। प्रकाश सदैव प्रकाश ही प्रदान करता है। परिणामतः इन उज्ज्वल प्राणों की कृतियाँ निश्चित ही जीवन को उज्ज्वल बना सकेंगी और समाज को स्वर्णिम ! यही कारण है कि इन प्राणों की कृतियाँ 'स्वान्तः सुखाय' होने पर भी समाज के लिए सुखदायी ही सिद्ध होती हैं—चाहे फिर वे किसी भी रूप में अभिव्यक्त क्यों न की गयी हों ?

रही 'अर्चना' की बात—सो कैसे कहूँ ? यही संकोच है। कारण 'अर्चना' का परिचय स्वाभाविकतया अपना ही परिचय होगा और अपना परिचय स्वयमेव 'अर्चना' का। अतएव पाठकों के हाथों ही इसे सौंप देना अधिक उपयुक्त रहेगा ! और फिर जब यह सत्य है कि 'मेरा मुझमें कुछ नहीं जो कुछ है सो तोर', तब मैं अपने और अपनी कृति

के प्रति क्या लिखूं ? अतः 'अर्चना' स्वयं अपना परिचय आप दे—यही एकमात्र अभिलाषा !

अन्त में, आचार्यवर डा० रामनिरंजन जी पाण्डेय, अध्यक्ष, हिन्दी विभाग, उस्मानिया विश्वविद्यालय, द्वारा 'अर्चना' के 'सन्मूल्यांकन' पर, केवल कृतज्ञता ज्ञापन कर, उनकी 'देन' से उऋण हो पाना मेरे लिए कैसे सम्भव हो सकता है ? साथ ही श्रद्धेय मुनीन्द्र जी द्वारा अर्चना के कलेवर को सुन्दरतम बनाने के लिए आभार अभिव्यक्त करना मैं अपना कर्तव्य मानता हूँ।

अक्षय तृतीया वि० सं० २०१८ कृष्णवल्लभ

अर्पित तुम हीं को हे देव !

एक

नित-नित ले नव-नव उन्माद
उर अंचल चंचल कर तात,
शत-शत शूलों का शृंगार
सजा पाते हम ही क्या हार ?

शूलों के सारे यह साज
पीडा के प्यारे यह प्राण,
नत पलकें कर उज्ज्वल उर ले
अर्पित करें तुम्हीं को आज !

उन्मादित यह उर उपहार
मान्य करो ! मेटो व्यवधान !!

दो

स्नेह-युक्त जन-जीवन-दीप
निज पीडा से हो नित कम्पित,
विकल वेदना से हो क्षीण
हाय मदिर हो पाता मीत !

मन्द-मन्द ही ले पर ज्योति
देव तुम्हारी करें आरती,
ओ ज्योतिर्मय ! तीव्र करो रे
जोत जीव की जलने दो रे !

झुलसी जीवन लौ को आज
सतत ज्वलित जीने दो प्राण !

तान

हृदय सिधु में स्मृतियाँ सारी
तरल तरंग-सी जब मिट पातीं,
विरह-अनल ने क्यों तब उनको
वाष्प रूप दे वर वाणी दी ?

धूम रूप औ' पंखहीन वे
विकलित विचरें ले उर भार,
मौनी वारिद सम करने क्या
मन छालों की घन बौछार ?

स्मृतियों का उन्मन अभिषेक
वृथा व्यथित करता उर देव !

चार

अन्तर के अर्चन हित आज
पावन पूजन करने प्राण,
जुटाए पूजन के क्या जान
अन्तर ही में सारे साज ?

अन्तर के इस अंचल में से
'प्राण-पुष्प' ले मृदु अंजलि में,
चरण तुम्हारे नित्य चढ़ावें
प्रणव ! प्राण को अपने हे !!

अर्चन साज जुटे जो भीतर
अर्पित तुम ही को हे देव !

पाँच

मंजुल मानस में मज्जित है
सस्मित पाती प्रस्फुट फूल,
किसने पर उनमें मधु घोला
निज प्राणों को भी अब भूल ?

मधुहृत मधुपाती-सा मधुमय
मधुफल से मधु प्राणन मधुमय,
हे मधुसम ! हे मंगलमय हे !!
मणि-माला हित तुम्हें समर्पित !

मधुमय मन की मधुमय भेंट
मान्य करो हे मधुमय देव !

छह

शरद के घन शरद का चाँद
शरद की रात शरद का प्रात,
शरद सम ही सारा जीवन
शनैः शनैः होगा क्या प्राण ?

शरदमय शुचि अन्तर से तब
प्राणों के सुकुमार सुमन ले,
अर्चन हित ही हे सिरमौर
समर्पित तुमको शत-शत बार !

शरद सम यह अनुपम उपहार
स्वीकृत हो हे प्रिय इस पार !

सात

बसंती भोर बसंती कोर
बसंती पंखुरियों को खोल,
थिरकती ले सौरभ अनमोल
जगाती जब सारे उर छोर—

बसंती तब अन्तर के फूल
सि'हाने ले बसंती धूप,
उरज सम खिल पाते किस कूल
सम्मोहित पल्लव पर झूल ?

बसंती फूलों-सा खिलना
खटकता क्यों पर जग को देव ?

आठ

क्षितिज का यह गुलाबी रंग
धरती का धीरज कर भंग,
उद्यत करवाने अभिसार
अवनी का अंबर संग आज।

मृदुल सुमन-सी सौरभ इस हित
महक उठी क्या हर उर में ?
प्राण ! प्रात भी इस हित क्या
जाग रहा अलसाते जग में ?

अंबर अवनी का अभिसार
देख बधाई दें क्या देव ?

नौ

उषा का यह अरुणिम उपहार
पूरब के अंचल से आज,
स्वागत दिनकर का कर मौन ?
जग को प्रस्तुत करता कौन ?

जग पर क्या कर पाता आदर
उर अंचल के उपहारों का ?
अनुपम मणि-मुक्ता भी पा कर
पारख क्या कागा कर पाता ?

उचित परख का जग को ज्ञान
कब करवाओगे तुम प्राण ?

दस

अंबर की लाली किस काज
लजीली-सी ले कोरी लाज,
क्षितिज का कर सफल शृंगार
मुखर होती ले रक्तिम साज ?

इस लाली से लाल करें क्या
मुकुलित मृदुलित उर के भाव ?
इस रोली से आज रंगें क्या
सतियों के ज्योतित सौभाग ?

सहज सजावें इस लाली से
प्रणयी प्राणों को हर प्रात ।

ग्यारह

प्रखर रश्मियाँ नित दिनकर की
कण-कण को नव दीपित कर,
उज्ज्वल निज की आतपता ले
दृढ हो तम का करें हनन !

इन किरणों-सी आभा को हम
उर-आँचल में अपना कर,
अन्तर की विकृतियाँ सारी
पूर्ण मिटा पावें क्या देव ?

किरणों से हो एकाकार
उज्ज्वल उर हम कर पावें !

बारह

प्रातः ही निज कान्त किरण से
जाग्रत कर जग निद्राञ्चल से,
अणु-अणु को आलोकित कर
जाग उठा सोया सुकुमार !

सावधान हो जाओ आज
जग के पाखंडी परिधान,
सजग हो जाओ निज को जान
मन हरने वालो, नादान !

जाग चुके जब सोने वाले
रिपु भागे प्रांगण ही छोड़ !

तेरह

कलित कोकिला की कल वाणी
सृजन प्राण नव कर उर में,
सरस नाद से क्यों कल्याणी
प्रात जगाने आ पाती?

जागरूक पर कितने हो कर
सुन पाते आनंदित वाणी,
कितने पर हे खोज-खोज कर
पा पाते तुमको स्वर-रानी?

स्वर्णिम अवसर खोने वाले
जग में क्या कम हैं हे देव?

चौदह

विहग-वृन्द की सरस साधना
मधु सरसा प्रति दिग् की ओर,
प्राण जगा मानस झकझोर
झाँक रही उर-पुट में भोर।

झुरमुट के इस कोलाहल से
विकल यामिनी भी जागी,
पल्लव के पीडित उर से
राग-रागिनी मधु ले जागी।

विहग वृन्द का अभिनव गान
जग को रोज़ जगाता देव!

पन्द्रह

नील नभ में नाथ किसकी
पाँख दो ले; प्राण एक ही,
प्रात नीड़ से ही आ मौन
कर रहे क्यों खोज पक्षी ?

कौन वह जिसका संधान
अंबर के उर में होता ?
कौन वह जिसका प्रियनाद
गूँजित कलरव में होता ?

अवनी के अंचल से हट कर
खोज क्या सम्भव है देव ?

सोलह

मृदुलित पल्लव के उपवन में
मंद मधुरिम मलयानिल से,
मुकुल कुमारी क्रीडा करने
तात ! प्रात ही खिल पाती !

पूर्ण प्रभा के प्रांगण में सज
'लोक लाज कुल मर्यादा तज,'
मञ्जुल मञ्जरि नृत्य करे रे
मादक मारुत संग दे ताल !

नव कोंपल की थिरकन पर
प्राण अनेकों घायल देव !

सत्रह

अंबर की अरुणिम आभा
पारस-सी आहों द्वारा,
अन्तर के अंचल में पा कर
प्राणों को कञ्चन कर पावें !

फिर भी स्वर्णिम जीवन में
पीडा तो सहनी ही होगी।
लाख कोशिशें करने पर भी
भावी तो होनी ही होगी।

पीडा से तब क्यों मुँह मोड़
चाहें हम सोने-सी गोद ?

अठारह

कितनी कलिकाएँ हर प्रात
कुचली जातीं निर्मम हाय !
कितनी खिलने से भी पहले
मुरझा कर मिट पातीं हाय !

कितने विकसित प्राणन पुष्प
मग में ही हैं कुचले जाते !
कितने प्रतिभाशाली भी यों
प्रगति के पहले मिट पाते !

खिलने से पहले मुरझाना
किस नगरी का नियम देव ?

उन्नीस

जीवन में कितनों का नाथ
हो पाता सपना साकार?
कितनों को मिल पाता साथ
सफलता का करने अभिसार?

कितनों के भावी परिणाम
हो पाते हैं पूरण प्राण?
कितनों के धोरण शुचिकाम
सफल हो पाते हैं छविमान?

असफलता का यह चिरराज
अर्पित करें तुम्हीं को हार!

बीस

मृदुलित ले मेंहदी के हाथ
आराधन करने हे नाथ,
रवि के अस्ताञ्चल से आज
अरुणाई ले आयी साँझ !

निज लाली से अंबर रँगती
निज रोली से जलद सजाती
निशिपति का करने नित स्वागत
निज आली को संग ले आती।

संध्या का यह सुधिमय स्वागत
स्वीकृत नित होगा क्या देव ?

इक्कीस

साँझ का स्वर्णिम आकाश
रूप सौम्य से ले अवकाश,
निज लाली को श्यामलता दे
नैसर्गिक परिणति में लीन!

स्वर्णिम नभ का यह परिणाम
विवशता का है क्या विश्राम,
या तम से ही आतंकित हो
हार मानता हो निष्प्राण?

विवशपूर्ण यह विषवत् हार
देन तुम्हारी है क्या देव?

बाइस

कजरारे वारिद क्यों छाते
संध्या की लाली पर देव?
अरुणिमता खो तम क्यों पाते
उज्ज्वल उर अंचल हे देव?

अँधियारे का प्रिय अभिशाप
संध्या संग क्यों रहता देव?
तममय घावों का परिताप
सदा रहता क्यों उर संग देव?

तिमिर सहन कर तम से हार
कैसे जी पावें लघु प्राण?

तेईस

अंबर ले तारों का थाल
अर्चन हित सज पाया देव ?
अम्बुज ले अरुणिममय भाल
अर्पण हित खिल पाया देव !

अवनी ले अंतर में ज्वाला
दीप जलाने उत्सुक देव !
लाली ले संध्या बाला
प्रीत जताने इच्छुक देव !

हिम कर ले उर हीरक हार
हँस-हँस क्यों आता इस पार ?

चौबीस

रात तममय हो चुकी क्या
प्रात अंतर में लिये अब ?
हार देव हे ! हो चुकी क्या
प्राण प्रियवर को लिये अब ?

विमुख मार्ग से हो चुके क्या
केवल ले मग में विश्राम ?
विलग प्राण से हो चुके क्या
लेकर पीडा-सा परिताप ?

बिसर नहीं पाये जब राह
पराजय क्यों होगी तब देव ?

पचीस

जगती को अंतर में क्यों
ज्वालाएँ ले जीना होगा ?
रजनी को अंतिम में क्या
करुणा कण दे मिटना होगा ?

विकलित मृदु जीवन को क्या
आहें ही सहना होगा ?
मृदुलित प्रिय प्राणों को क्या
आँसू ही पीना होगा ?

प्रिय प्राणों को यह अभिशाप
मिल पाया क्यों हे अभिराम ?

छब्बीस

रजनी के अंचल की कोर
स्पर्श कर सारे उर छोर,
करुणा कण दे कर क्यों भोर
लजीली सम हो पाती लोप ?

उर क्रीड़ा का हे अभिराम
हो पाता क्या यह परिणाम ?
विध व्रीड़ा का हे शुचिमान
क्यों हो पाता यह अंजाम ?

लजीले नित करुणा के कण
छलकते क्यों पल्लव पर देव ?

सत्ताईस

अंधकार ले रजनी रानी
कजरारी ले अलकें व्याली,
किस जीवन का ले अभिशाप
आयी कितने जीवन माप ?

नभ पर क्या टोना कर यह
आयी उजियाले को गाड़ ?
नादानों से करने क्या यह
आयी जीवन का खिलवाड़ ?

रजनी का यह तममय रूप
प्रायः क्यों हो पाता देव ?

अट्ठाईस

अवनी सूनी अंबर सूना
सूना है सारा संसार।
सरिता सूनी सर भी सूना
सूना है अंतर निःसार।

सूनेपन का यह अभिसार
किस जीवन का है अभिशाप ?
सूनेपन का यह अवतार
किस अनहोनी का अवसाद ?

सूने सारे जब उर साँस
जगाएँ तुमको तब किस आस ?

उनतीस

रौंदी जाती धरती सारी
रौंदा जाता है आकाश,
कण-कण जग का रौंदा जाता
रौंदा जाता हर प्रश्वास !

रौंदन क्रीड़ा ही हे नाथ
अपनायी तुमने क्या जान ?
रौंदन वाली नीति तात
मनवायी तुमने क्या मान ?

रौंदित हो कर मिट पाते क्या
जन्म जन्म में जीवित प्राण ?

तीस

प्राणों पर कितने आघात
किये तुमने हे जीवन नाथ ?
उफ़ न कर पर हमने तात
सहन कर सहलाये हर रात !

कब तक पर तुम किये जाओगे
निर्मम सम निष्ठुर आघात ?
कब तक यों तुम दिये जाओगे
निर्दय सम पीड़ा हर प्रात ?

बोलो ! बोलोगे भी क्या संहार
शोषण कर हे प्रलयंकार ?

इकतीस

कितनों के अंचल हैं कुचले
क्रूर काल के आघातों ने ?
कितनों के अंजल हैं कुचले
निर्मम निज के प्रतिघातों ने ?

कितनों के जीवन हैं झुलसे
पीड़ित शीतल ज्वालाओं से ?
कितनों के हैं अरमाँ उलझे
अनहोनी के संहारों से ?

मृदु जीवन पर ये आघात
शोभा क्या दे पाते देव ?

बत्तीस

धीर ध्रुव धरती का धीरज
पग-पग पर सह कर आघात,
द्रोह में होगा क्या परिणत
घाव को आह्वान कर नित ?

आओ हम भी द्रोह करें तब
उर के घाव हरे करें सब,
परिचित हो प्रहारों से फिर
त्यक्त क्षमा प्रतिकार करें !

क्षमाहीन हो पाने पर ही
विद्रोही क्या कहलावेंगे ?

तैंतीस

जीर्ण-शीर्ण औ' जर्जर को
शीघ्र-शीघ्र ही झर-झर कर,
नव अंकुर नव-नव पल्लव को
हर्षित हो स्थल देना होगा !

परिणति का यह प्राकृत ध्येय
पूर्ण सदा हो पाता देव !
परिवर्तन का नव परिणय
पग पग पर हो पाता देव !

नित्य नूतन रूप इसी हित
जर्जर ही तो हो पाता है !

चौंतीस

श्यामल नीरद के नीचे जब
पंख कटे हैं टूटे पग हैं,
अरुणिम आभा का तब बोध
क्योंकर कर पावें उर शोध ?

जीवन का यह अतिशय ह्रास
कैसे हम कर पावें दूर ?
दिव्य व्योम का कैसे भास
कर पावें हम उर रिपु भूल ?

विवश पंछी सा यह जीवन
किस विकृति का है परिणाम ?

पैंतीस

शशि को श्यामल घन में से
रवि को व्यापक नभ में से,
प्रायः प्राण सिमट अंचल में
लुक छिप ही बढ़ना पड़ता !

दिव्य द्युतिमय का भी जब
हो पाता यों दारुण हाल,
क्षुद्र भला तब इन प्राणों का
क्योंकर ना हो करुणिम हाल ?

करुणिम तम का चिर आरोप
स्वाभाविक ही है क्या देव ?

छत्तीस

उन्मन मन आकम्पित क्यों
उन्मत उर के उन्मादों से ?
प्राण सुमन आतंकित क्यों
शूलों सम निज रिपुदल से ?

तृणवत् जीवन आशंकित क्यों
संघर्षों से आघातों से ?
मृणवत् जीवन आकांक्षी क्यों
क्षुद्रित जीवन के सपनों से ?

सम्मोहन के मृग जालों का
बन्धन कब तक रह पावेगा ?

सैंतीस

नादानों ने कब समझा है
जीवन में मिटने का नाज़ ?
निज हित इच्छुक प्राणी ने
कब समझा आपे का राज़ ?

कब समझेगा लोलुप जीव
बलि देने का आनन्द देव ?
कब समझेगा अरिवश जीव
पर जन की पीड़ा हे देव ?

नादानों को पछताने दो
मिटने के पहले हे देव !

अड़तीस

जननी ले अंचल में जीवन
उर में क्यों प्रिय दीप जलाए ?
दृग में ले गौरव वह उज्ज्वल
प्राणों से क्यों प्राण सजाए ?

निज प्रतिकृत को दे दे जीवन
निज जीवन को कर बलिदान,
किस धोरण को पूरण कर यह
हर्षित हो मिटती ले आन ?

धन्य धन्य यह जननी जीवन
साध्य समर्पण जिसका देव !

उनचालीस

विश्व वेदना विस्मृत कर हे
अणु शक्ति का ले उन्माद,
नित्य शांति का वध करने
मानव क्यों तत्पर ले साज ?

मानव मानव का संहार
करेगा क्या निज की मति हार ?
दानव हो युग मानव आज
प्रलय का होगा क्या आधार ?

मानव की यह पशुवत् लीला
कब तक रह पावेगी प्राण ?

चालीस

दीप सारे बुझ चुके क्या
स्वल्प स्नेह के कारण आज ?
बाती में ही या जलने की
स्वल्प शक्ति के कारण आज ?

स्नेह-हीन गत स्निग्ध जीवन
स्वल्प स्रोत ले होगा क्या ?
शक्तिहीन गत संबल जीवन
स्वल्प स्फुरन ले होगा क्या ?

पूर्ण स्वल्पता को ही करने
बार बार क्या जन्में देव ?

इकतालीस

स्वप्न सारे मिट चुके क्या
भूल के शब्दों से घुल ?
अश्रु सारे बह चुके क्या
दर्द के द्वारों से खुल ?

रिक्त मृदुमय हो चुके क्या
अंतर के छलकते कोष ?
सिक्त शुचिमय हो चुके क्या
क्रन्दन से करुणा के कोष ?

मौन दर्द का यह उद्घोष
मान्य करो विस्मृत कर दोष ?

बयालीस

सागर के तट से क्या पूछें
सरिता की सीमा का हाल ?
अम्बर के उर से क्या पूछें
अवनी की पीड़ा हे प्राण ?

उलझी कलियों से क्या पूछें
अलियों के उर का उन्माद ?
बाती की लौ से क्या पूछें
प्रियतम का परिचय हे प्राण ?

किन प्राणन से रह-रह पूछें
निज उर की क्रीड़ा हे देव ?

तैंतालीस

मधुर कल्पने ! द्वार खोल कर
किस अंचल में कर विश्राम,
नैन मूँद वाणी ले मूक
किस दिसि से आयी तुम छूट ?

तुम्हारा यह अनुपम अनुराग
प्राणों को प्राणों से बाँध,
मदमाता ले प्रिय उन्माद
लिये जाता उर को किस पार ?

सहज कल्पने इसीलिए क्या
रह रह आती हो इस पार ?

चौआलीस

शैशव उलझा यौवन उलझा
उलझ चुका जब जीवन सारा,
उलझ उलझ ही तब तट पर
रह पाये उलझे ही दिन भर !

उलझी राहें उलझी बाँहें
उलझ चुकीं जब उर की आहें,
उलझ उलझ ही तब प्रतिपल
मिट पाये उलझे ही दम भर !

उलझ चुके जब अरि अलकों में
पावें क्यों तब 'प्रिय' पलकों में ?

पैंतालीस

विगत वैभव के स्वर्णिम दिन
दुपहरी में क्यों अस्त हुए ?
वरद् वैभव के स्वप्निल स्मित
पूर्ण नहीं क्यों हो पाए ?

विवशता के कारण ही क्या
विसर्जित हो पाया वैभव ?
या परवशता ही के कारण
मिट पाया गत वर वैभव ?

विसर्जन ही जब वैभव सार
अर्पण क्या तब कर पावें ?

छयालीस

घन श्याम उमड़ आ जब कहते—
'उस पार क्षितिज के प्रियतम हैं,'
निश्वास नीड़ से हाँ भर कहते—
'इस ओर प्रियतम के हैं प्राण !'

'प्रियतम की साकार प्रतिमा'—
'प्राण-देह' को कह तब कौन,
मानस की साभार महिमा—
मानव को समझाता मौन ?

प्रिय को यों प्राणों में पा कर
एक रूप क्या होंगे प्राण ?

सैंतालीस

हृत्तंत्री से राग छिड़ी जब
आहों ने तारों को ताना,
उर पीड़ा ने रस को बरसा
श्वासों ने स्वर को सींचा !

सरस रसीले स्वर यों हिल मिल
अंतर की सिसकन से घुलमिल,
पीड़ित प्राणों को पलपल
व्यक्त करें ले व्यथा अमित !

उर वीणा के करुणिम स्वर
दग्ध करे प्राणों को दाह !

अड़तालीस

सुप्त व्यथाएँ जाग उठीं जब
विकल वेदना की ले ज्वाला,
दग्ध प्राण तब विदरित करने
सतत श्वास क्यों तत्पर देव ?

श्वासों की विद्रोही क्रीडा
उच्छ्वासों की आतप व्रीडा,
आतुर निश्वासों को कर
कब तक सजग रखेगी प्राण ?

विकल वेदनामय उरलोक
रह रह प्रदान करता शोक ?

उनचास

जग के करुणिम कोलाहल की
प्राणों में क्यों प्रतिध्वनि होती ?
दुःख के दारुण संवेदन की
मृदु उर में क्यों पीड़ा होती ?

व्यथित हृदय को प्रत्याभास
हो पाता क्यों करुणिम देव ?
पीड़ित उर को 'पर' परिताप
द्रवित क्यों कर पाता हे देव ?

पीड़ित उर का यह तादात्म्य
किस कारण हो पाया प्राण ?

पचास

पग पग पर ले पीड़ा प्राण
आहें भर उर अंचल आज,
दग्ध हुआ जाता किस काज
जीवन में ले जीवित साज ?

पीड़ित जीवन की ये आहें
सींच अश्रु से प्राण-पुष्प को,
आज पिरोतीं क्या उर हार
सिसकन से प्राणों को गूँथ ?

पीड़ित आहों का यह हार
हो पाया प्रिय उर को भार !

इक्यावन

जीवन पथ के कण-कण पर हे
शूल बिछे जो पग-पग पर,
कितने हाथ उन्हें चुन-चुन
प्राण सजा पाते हँस-हँस ?

कितने पर जो हार मान कर
मग ही में रह-रह मिट जाते,
न्याय किया जाता क्या उनसे
पुनः पुनः जीवन दे प्राण ?

जीवन मग में मिटने वाले
तदाकार क्या हो पावेंगे ?

बावन

दिव्य वेदना ले मृदु उर में
सतत साधना कर पावें !
भव्य भावना ले अंतर में
सजग अर्चना कर पावें !

दर्द सदा ले अंतस्तल में
जन-जन का हित कर पावें !
मर्म सदा ले मधु-सा उर में
विष भी मधु-सम कर पावें !

प्राण ! पीड़ हम ले उर में
प्राप्त तुम्हें क्या कर पावें ?

तिरपन

दग्ध हुए जाते जब प्राण
मृदु उर में ले अनल महान्,
किसने दे तब मधु अजान
दिया मृत्यु को जीवन दान ?

कितने पर मधु को पहचान
मिटा पाते हैं उर-उन्माद ?
कितने निज ही को मधुमान
हो पाते हैं मधुवत् प्राण ?

निज से ही निज की पहचान
व्यर्थ क्यों तब कर बाते हो ?

चौपन

अंतरतम के अरुणिम अणु में
किस आनन का है आवास ?
अंतस्तल के करुणिम कण में
किन प्राणन का है वर वास ?

उर अंचल की अंजलि में हे
किसका हो पाता आभास ?
उर की मृदु उत्कण्ठा में हे
किसका हो पाता मधु भास ?

कौन चितेरा उर में लुकछिप
चित्र नये रचता हे देव ?

पचपन

किसने प्राण प्रणित कर तात
पाया कब कैसा प्रतिदान ?
किसने रच प्रणवमय प्राण
चाहा कब कैसा आदान ?

किसने दे अनुपम अनुराग
परिवर्तित क्या पाया प्राण ?
किसने दे अति उत्तम भाग
माँगा कब कैसा प्रतिमान ?

प्रतिकृत की आशा तज कर
हम भी क्या कुछ दे पावें ?

छप्पन

प्रिय, तुम्हारी ज्योति नेत्र के
तारों में प्रतिबिम्बित जान,
उर-अंचल में नित क्या पावें
तुमको ही हे प्रिय अजान ?

अंतस्तल के अंचल में यों
प्रियवर का जब हो आभास,
क्यों फिर ना प्रतिकृत हो दृग में
नयन हृदय दर्पण जब प्राण !

नयनन की यह अंतर कोर
क्यों प्रदान की तुमने देव ?

सत्तावन

जन्म-जन्म की अभिलाषा को
बार-बार ले जन्म निदान,
पूर्ण सदा करने क्या प्राण
ढूँढ़ता निज को नादान ?

इस जीवन के आँगन में पर
छुप न सकेगा अब निज भेद !
इस जग के फिर आकर्षण में
रम न सकेगा मम उर देव !

पूर्ण इसी जीवन में होना
इस जीवन को है हे देव ?

अठ्ठावन

प्राण लघु ले नाथ कब तक
जीर्ण जीव सम जीवें हम ?
स्वल्प सत्य ले साध्य कब तक
जीवन का उत्कर्ष करें हम ?

हाय ! हार ही होनी है जब
जीवन के प्रांगण में प्राण,
जीना औ' मिटना तब कैसा
जग के ही अंचल में तात !

होनहार जब अनहोनी है
हार-हार क्यों जीवें तब ?

उनसठ

जब कीर पिंजर से चला
जग देखता ही रह गया !
जब नीर अंतर से बहा
जग सोचता ही रह गया !

असमञ्जस यों जग रह कर
आहें भर कर आँसू पी कर,
समझ झरोखे हो आसीन
केवल साँसें गिन पाया !

द्वार समझ के खोल प्राण में
समझ 'प्राण-प्रिय' पाता कौन ?

आन्तरेत्त (Index)

क्र. सं.	गीत	संख्या
१.	अंतर के अर्चन हित आज	४
२.	अंतरतम के अरुणिम अणु में	५४
३.	अंधकार ले रजनी रानी	२७
४.	अंबर की अरुणिम आभा	१७
५.	अंबर ले तारों का थाल	२३
६.	अंबर की लाली किस काज	१०
७.	अवनी सूनी अंबर सूना	२८
८.	उन्मन मन आकंपित क्यों	३६
९.	उषा का यह अरुणिम उपहार	९
१०.	कजरारे वारिद क्यों छाते	२२
११.	कलित कोकिला की कल वाणी	१३
१२.	कितनी कलिकाएँ हर प्रात	१८
१३.	कितनों के अंचल हैं कुचले	३१
१४.	किसने प्राण प्रणित कर तात	५५
१५.	क्षितिज का यह गुलाबी रंग	८
१६.	घन श्याम उमड़ आ जब कहते	४६
१७.	जग के करुणिम कोलाहल की	४९
१८.	जगती को अंतर में क्या	२५
१९.	जननी ले अंचल में जीवन	३८
२०.	जन्म-जन्म की अभिलाषा को	५७

अर्चना ६१

क्र. सं.	गीत	संख्या
२१.	जब कीर पिंजर से चला	५१
२२.	जीवन में कितनों का नाथ	१९
२३.	जीवन पथ के कण-कण पर हे	५१
२४.	जीर्ण जर्जरित जीवन को	३३
२५.	दग्ध हुए जाते जब प्राण	५३
२६.	दिव्य वेदना ले मृत्यु उर में	५२
२७.	दीप सारे बुझ चुके क्या	४०
२८.	धीर ध्रुव धरती का धीरज	३२
२९.	नादानों ने कब समझा है	३७
३०.	नित-नित ले नव-नव उन्माद	१
३१.	नील नभ में नाथ किसकी	१५
३२.	पग-पग पर ले पीडा प्राण	५०
३३.	प्रखर रश्मियाँ नित दिनकर की	११
३४.	प्राण लघु ले नाथ कब तक	५८
३५.	प्राणों पर कितने आघात	३०
३६.	प्रातः ही निज कान्त किरण से	१२
३७.	प्रिय, तुम्हारी ज्योति नेत्र के	५६
३८.	बसंती भोर बसंती कोर	७
३९.	मधुर कल्पने ! द्वार खोल कर	४३
४०.	मञ्जुल मानस में मज्जित हैं	५
४१.	मृदुलित पल्लव के उपवन में	१६
४२.	मृदुलित ले मेंहदी के हाथ	२०
४३.	रजनी के अंचल की कोर	२६
४४.	रात तममय हो चुकी क्या	२४
४५.	रौंदी जाती धरती सारी	२९

क्र. सं.	गीत	संख्या
४६.	विगत वैभव के स्वर्णिम दिन	४५
४७.	विश्व वेदना विस्मृत कर हे	३९
४८.	विहग-वृन्द की सरस साधना	१४
४९.	शरद के घन शरद का चाँद	६
५०.	शशि को श्यामल घन में से	३५
५१.	शैशव उलझा यौवन उलझा	४४
५२.	श्यामल नीरद के नीचे जब	३४
५३.	सागर के तट से क्या पूछें	४२
५४.	साँझ का स्वर्णिम आकाश	२१
५५.	सुप्त व्यथाएँ जाग उठीं जब	४८
५६.	स्नेह-युक्त जन-जीवन-दीप	२
५७.	स्वप्न सारे मिट चुके क्या	४१
५८.	हृदय सिंधु में स्मृतियाँ सारी	३
५९.	हृत्तंत्री से राग छिड़ी जब	४७